वियोगिनी

वियोगिनी

गोपाल नारायण सौरभ

मोहिनी प्रकाशन
नई दिल्ली

मुद्रक :
श्री महेन्द्र कुमार जैन
कार्मशियल इक्विपमैन्ट
३८०७ चर्खेवालान,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

प्रकाशक :
मोहिनी प्रकाशन
ई० डी० १०६ टैगोर गार्डन,
नई दिल्ली - २७

आवरण पृष्ठ
जे० कांतम

संस्करण : प्रथम ११०० (१९७०)

मूल्य : [illegible] रुपये [illegible] सौ [illegible]

गीति काव्य : वियोगिनी, रचयिता : गोपाल नारायण सौरभ

वि

यो

गि

नी

वियोगिनी

आत्मा के अरूप सौन्दर्य

को

ओ !

मेरे जीवन संगी

तुम

काव्य कल्पना जीवन

तुमको

प्रत्येक जनम

में

पहचान गया अन्तर्मन

गोपाल नारायण सौरभ

कृति

से,

प्रसाद एक चौराहा थे। उन्होंने एक गली बनायी·····उस छायामय चौराहे से···· मैं उस गली के अंतिम नुक्कड़ पर खड़ा अतीत पर विहंगम सी दृष्टि डाल·····

कुहिकिन की विरहिणी आत्मा, राधा की साधना, मीरा की आराधना, जूलियट ड्राउट की चिर प्रतीक्षा, लोटेबफ की छलना, नागमति की पीड़ा, पद्मिनी का सौन्दर्य, सीता का आत्म-त्याग, प्रेम-आत्मा का लोक कल्याण,

मेरी आत्मा में कुसुमित कुसुम की पाँखुरियों से एकात्म हो खिल उठे हैं

............और

मैं चिन्तन पयोधि में डूबता - उतराता, गुनगुनाता, साँझ ढले लौट आया। आत्म-रति का चरमोत्कर्ष था वह पल ! जो शब्द बनकर अंतर में कसमसाया, अधरों पर स्वर सा मचला, पृष्ठों पर "वियोगिनी" बन मुस्करा पड़ा अधर पाँखुरियों सा……

४०/४१ दी माल
शिमला-१

गोपाल नारायण सौरभ

मार्च सन ५६

बरेली ।

फागुनी सावनी साँझ । साहूकारे
की वीथियों में......

मेरा कवि .....

घातें - प्रतिघातें सहतीं मौन शैल मालायें अपने आंतरिक और आत्मिक भावों की अभिव्यक्ति में नितांत मौलिक हैं । यह मौलिक अभिव्यक्ति आत्मा की गहराईयों से स्वत: प्रवाहित सौन्दर्यमय विश्व शांति और मानव कल्याण की भावना से ओतप्रोत शीतल जल के स्त्रोत - जो निरतंर अपनी कविता भाषा में "तुम जियो और जीने दो" का गुंजन संसृति में गुंजा रहे हैं युगों से ।

पर उनके सुख, शांति, मधुरता, प्रेम, पर तृषा तृप्ति, परस्पर सौहार्द्र भावों भरे, "तुम जियो और जीने दो" गुंजन से संसृति अनगूंजी

है अब तक । कदाचित इसीलिए बसुधा का आंचल रक्तिम है, जग में माटी के लिए माटी से युद्ध होते हैं, विरह व्याकुल चिर प्रतीक्षित प्रेमियों के नयनों में नय नीर है और कूकती हुई कोयल की वेदना उन्मादिनी विरहिणी सी आलाप रही है युगों से निर्झरों का यही राग आम्र मंजरियों से मानव की शाश्वत प्यास बन कर .....।

ओ ! सत्यम् शिवम् सुन्दरम्
गरिमामय पूजन वंदन
अतिरंजित सुख-दुख छाया
आनंद बरस दो कन कन

गोपाल नारायण सौरभ

O! nightingale let us weep and wail together.

You may pine for your rose and I for my Paramour.

(Translated from Urdu)

वियोगिनी

गोपाल नारायण सौरभ

प्रतिबिम्बित अन्तर्मन में
उस प्रेम, मिलन की छवियाँ
ध्रुव तारे - सी ज्योतित हैं
करुणा की कोमल कृतियाँ ।

जीवन की पृष्ट भूमि पर
धूमिल तम दुख की छाया
बन गई नीर नयनों में
जब असह भार निज पाया।

निस्सीम हृदय ही था जो
दुख से भर जाया करता
हाँ, भाव उसी का दृग में
आँसू बन छाया करता।

तब से ही केवल मुझ को
एकाकीपन से ममता
मन में तत्काल न मेरे
जिसकी समता उत्तमता।

यदि तुम ही मेरे पथ की
बाधा हो जाते प्रियतम
मानस - मराल से कुछ पल
लहरों में खो जाते हम।

अभिशापों के धोने को
बहती आँसू की सरिता
अन्जान व्यथा से प्रेरित
कवि की कल्याणी कविता।

वियोगिनी

मधुवन में सौरभ पूरित
यौवन अंबुज का खिलना
विकसित होकर मुरझाना
फिर धूलि कणों में मिलना।

पल भर की एक प्रगति में
सांसों की कलिका खिलती
मुरझाने पर कानन को
वह दहती दहती चलती।

मुस्कान चाँदनी जैसी
छिटकी है अधर-धरा पर
ललचाए लोल लहर-से
मानस-मानस मग्न भर कर।

प्रिय, प्रथम प्रणय की कविता
युग युग तक अमर रहेगी
सोने के अक्षर होंगे
जब चमक चमक चमकेगी।

गाता जाये कवि अपने
दुख के सपने गीतों में
घुल मिल जाये वह इतना
जैसे भूले मीतों में।

दृग से छलकी पड़ती है
आँसू बन व्यथा घनेरी
विकसित कलिका सी - जगती
करुणामय कविता मेरी।

दृग में मदिरा की लाली
कुछ पल को छलका करती
सुन्दरता की मादकता
नित उर में झलका करती ।

कलिका के मृदु अधरों की
मादक सी विद्युत रेखा
खो बैठा मैं अपने को
मैंने भी जीवन देखा ।

मदिराओं से भी मादक
शोभा प्रियतम के तन की
संचित निधि है वह सुषमा
मेरे उन्मादी मन की ।

भाए जो इन आँखों को
सुन्दर कहलाए जग में
चलते चलते जीवन के
वह छलता जाये मग में ।

धूमिल प्रकाश, संध्या थी
कर प्राण परस मुस्काए
उस पुलकन, उस सिहरन में
जीवन का रस घुल जाए ।

सुख पाते थे यह मिल कर
दृग से दृग, अधर अधर से
रोते हो उस बेला को
मन, क्यों अब कवि के स्वर से ।

वियोगिनी

खिसका कर झीना आँचल
घातें चंचल चितवन की
क्षण भर को रुक जाती हैं
चलती सांसे जीवन की ।

नीरद का नील निलय में
कोमल पंखों से उड़ना
अवसान उसी जीवन का
दृग की कोरों से मुड़ना ।

सूरज की अरुण किरण को
छूकर हिम कण गलता है
जैसे पीड़ित जीवन का
दुख आँसू बन ढलता है ।

जीवन का जाना आना
तारों - सी आँख मिचौनी
जाने की आँखें काली
आने की आँख सलोनी ।

मानस की कठिन समस्या
सुख - दुख बनकर उलझी है
ऐसी यह एक पहेली
जो कभी नहीं सुलझी है ।

संघर्ष सतत साहस से
दुख से करना जीवन है
जो देख द्रवित हो जाये
यह ही तो सच्चा मन है ।

वियोगिनी

होती मेरे अन्तर में
जीवन की अद्भुत क्रीड़ा
मेरे अंतस प्रांगण में
नर्तन करती है पीड़ा।

छेड़ो मत गीत सुनाओ
रहने दो मुझे अकेला
दृग से मोती ढलने दो
सुधियों की पावन बेला।

जलनिधि में टूटी लहरें
अम्बर में आँसू देखे
असफल हर प्रेम कहानी
जग परिपाटी के लेखे।

मुस्कान और आँसू है
जीवन की तुहिन समस्या
सुखमा के दृग में फिर भी
आँसू की कठिन समस्या ।

निष्ठुर काँटों ने अपनी
चुभने की रीत न छोड़ी
क्या दोष कि यदि जगती ने
अपनी भी रीत न तोड़ी ।

जल नहीं, विश्व सरिता में
इतने हैं अश्रु नयन में
धरती भी उठा न पाती
इतना दुख मेरे मन में ।

दृग की सीपी में जब भी
कोई रचना होती है
दुर्भाग्य हुआ तो पानी
अन्यथा वही मोती है।

वियोगिनी

आँसू अपने अन्तर में
जो भेद छिपाए रहते
वे इन नयनों में आकर
निज मौन व्यथाएँ कहते।

घन अंचल से रस बहता
क्यों हृद्-पीड़ा को कहता
संताप मिटाता दहता
दृग जल बन बहता रहता।

निष्ठुर, बहकर ही तुमने
विरही तन शूल बनाया
सरसिज यह सींच प्रणय का
मन चाहा फूल खिलाया।

वियोगिनी

वीणा की मृदु झंकार
विरही मन को कब भायीं
गीतों की कोमल कड़ियाँ
कानों ने कब दुहरायीं ।

मधुरस चिर उर उपवन में
प्राणों की प्रणय कथा का
नयनों के भावुक पथ में
रह जाता सार व्यथा का ।

प्यालों में मादक पीड़ा
जैसे सौरभ सुमनों में
अलिकुल निर्मम छलना से
बन जाती जल नयनों में ।

वियोगिनी

नीरव निश्छल नयनों में
मृदु कोलाहल कर आते
जसे घन में जल ऐसे
चुपचाप कहीं छिप जाते ।

संचालित जिनसे जीवन
मेरी संसृति गतिविधि का
दृग अंजलि अर्घ्य चढ़ातीं
निर्मल मोती की निधि का ।

प्रियतम के कोमल पग में
मत कण्टक बन चुभ जाना
उपवन के रखवारों से
मत निर्ममता दिखलाना ।

जो भेद छिपा अन्तर में
हम दोनों के जीवन का
आँसू वह आज बना क्यों ?
कोमल अभिशप्त नयन का।

विरही नयनों से आँसू
निर्झर - से झरते रहते
पाषाण हृदय के कोमल
भावों की गाथा कहते।

मृदु स्वर में जब गा गा कर
मैं गीत बनाया करता
प्रियतम की मादक सुधि में
तब नीर बहाया करता।

वियोगिनी

तू देख मुझे हँसती है
तुझको अभिशाप जलाए
अविरल सुहाग की रेखा
ऊषे, तेरी मिट जाए।

भूला मानव प्रेमी बन
जग के सुख वैभव सारे
जाने कितनी रातों के
जाने कितने ही तारे।

प्रियतम अंतर में मेरे
व्रीडा से कोई आया
अब तक रहस्य है, वह थी
पीड़ा अथवा यह छाया।

वियोगिनी

कानन कुसुमों को छोड़ा
शूलों का पथ अपनाया
प्रियतम को गले लगाया
फिर भी जग ने ठुकराया ।

हाँ, युग को याद रहेगी
शूलों की अमर कहानी
युग से युग तक फैली हैं
आहें जानी पहचानी ।

कोकिल भी कूक सुनाकर
भर जाती शव में जीवन
घिर कर क्यों श्याम घटायें
कर गईं आर्द्र अरुणानान।

मिट जाने दो जीवन में
जितनी प्रकाश की रेखा
क्या शेष न होगा कुछ भी
इसकी करुणा का लेखा।

मुझसे खेला करते हैं
निशिदिन जो आँख मिचौनी
राका के शशि - सी सुन्दर
सूरत वह मधुर सलोनी।

पतझर के आने पर ही
करुणा की कलिका खिलती
ऐसी इसमें मदिरा है
जो दिवानों को मिलती ।

कलियाँ उन्मुक्त हँसे जो
मालिन, उन पर क्यों पहरा
क्यों क्रूर काल - सा काला
यह बंधन गहरा गहरा ।

वैभव उच्छृखंल जीवन
किसने यह बात न मानी
चाहा है सबने फिर भी
उस दुख को जो अभिमानी ।

इस मीना की मदिरा को
पीना चाहो तो पी लो
यह हैं सौरभ की सांसें
इन सांसों को भी जी लो।

है रंच मात्र भी परिमल
जब तक कलियों के तन में
रहता तब तक आकर्षण
मनचले मधुप के मन में।

तेरे तन की मदिरा से
भर लूँ प्याले - सा जीवन
निशिवासर तुझे पिलाकर
भूलूँ अपने को प्रतिक्षण।

वियोगिनी

ओ प्राण परस पाने को
मन करते रहते आकुल
दृग घूँघट लाज हटा कर
आकुलता बहती व्याकुल ।

चुपके से आती मधुऋतु
नूतन परिधान पहिन कर
प्रियतम पीड़ा पागलपन
नर्तन करता दृग में भर ।

वारिद - सी बरसें आँख
चपला - सी चमके पुतली
यह बंधन ही कुछ ऐसे
बातें भी हों वह तुतली ।

सुख की कुछ किरणें देकर
जाने बीती है कब की
मानस पट पर अंकित है
वह अलस दुपहरी अब भी ।

सम्बन्ध हृदय से, तन से
अभिव्यक्ति कठिन उस सुख की
मन चुरा लिया जिस छवि ने
अभिव्यक्ति कठिन उस मुख की ।

निशि के पिछले पहरों में
मुख का चुम्बन से धुलना
ऊषा के मादक पल में
अलसित आँखों का खुलना ।

तेरे मृदु आलिंगन में
मलयज सुगंधि-सा सुख है
उसमें छाया आँसू की
हीरों-सा दमका मुख है।

अभिनव यौवन में कलियाँ
इतनी भोली मृदु कोमल
रसभरी बात पर हँसकर
'क्या है' सकुचा खातीं बल।

ऊषा आनन की लाली
श्यामलतम किसने कर दी
यौवन चूनर धरती की
मोती से किसने भर दी।

वियोगिनी

जीवन की फुलबगिया में
पतझर में ऋतुपति आया
यह अनायास परिवर्तन
क्या प्रेम मनुज ने पाया ?

वियोगिनी

तटिनी तट पर रजनी में
किसने यह दीप जलाए ?
'आयेंगे प्रियतम मेरे'
यह कह कर दीप बहाए ।

निर्झरणी में नौका से
वे हिलते डुलते बहते
उस पार रेणु के तट पर
मानों मिलने को कहते ।

झंझावातों में पड़कर
कुछ डूबे कुछ उतराए
कुछ ने क्रीड़ा ही समझी
कुछ के आँसू भर आए ।

वियोगिनी

कण कण निर्बन्ध नियति का
किसलिये मुदित रहता है ?
बंधन में रहता मानव
इसलिये व्यथित रहता है ।

मानस की तृषित कामना
जीवन में रही अधूरी
पर मृत्युदण्ड से पहले
सपनों में होती पूरी ।

इसलिए निमीले आ जा
सपनों में बात करूँगी
पहना पुष्पों की माला
जीवन में इसे वरूँगी ।

रवि - राग न रंजित जो रग
उसका फिर व्यर्थ जनम है
प्रियतम, वह भी क्या मानस
जिसने न चुराया मन है ।

जीवन का मधु कब माँगा
ब्याही चाहें कब चाहीं
फिर भी देतीं हैं पीड़ा
मधुलता - कुंज गलबाहीं ।

यद्यपि मेरे प्राणों ने
देखी उनकी निर्ममता
जीवन का इठलाता सुख
पर कर पाया कब समता ।

घनश्याम सरीखे मानस
रस रास रसीला रचते
आकुल अदृश्य अन्जाने
उस पल क्यों आँसू बहते।

इस विकल विरह के पल में
बालक - सी व्यथा मचलती
रहते तुम प्रतिपल जिसमें
जल - धारा उसमें पलती।

दृग जल - अंजन मिलने से
जिसकी रचना होती है
नयनों का कोष अमोला
वह श्वेत - श्याम मोती है।

प्रेमानल धुँआ उठे तो
अम्बर पर शम्बर बनते
नभ मोती बिखराए तो
कवि की वाणी में छनते ।

परिमल पुष्पों की गोदी
प्राञ्जलता से कब मिलती
मन युगों साधना करता
आशा की कलिका खिलती ।

ओ जनम जनम के साथी
कैसे तुमको ठुकराऊँ ?
चाहे तुम पीड़ा ही दो
मैं फिर भी भूल न पाऊँ ।

दृग से चुपचाप निकल तुम
क्यों विरह - कथा कहते हो
मानस के छिपे भाव की
क्यों पुनरावृत्ति करते हो।

यह बात नहीं तब बोलो
किस कारण से बहते हो
अपने फूलों से तन पर
क्यों व्यथा भार सहते हो।

बादल अपनी पीड़ा को
धरती से कह लेता है
एकाकीपन में मेरा
यह मन, रो भर देता है।

मनचीता कब मिलता है
नौका का जीवन माँझी
जग सागर पार उतारे
कब मिलता ऐसा साझी ।

वन - उपवन - जग मन्दिर में
निशिवासर तुमको खोजा
तुमको मैं देख न पाई
प्रतिबिम्ब तुम्हारा देखा ।

जब भी हृद उच्छ्वासों से
अवगत होगे, आओगे
रस वंचित मन सुमनों को
जीवन से सरसाओगे ।

सम्भव कुछ कमी रही है
मेरे रागित अर्चन में
अन्यथा न रोते सुख - दुख
क्यों होती पीड़ा मन में।

भूली भटकी भ्रमरी मैं
युग - युग से खोज रही हूँ
चौरासी लाख योनियाँ
बदली हैं और थकी हूँ।

इतने युग बीत गए पर
तुम अब तक लौट न आये
किस चारु चन्द्र से उलझे
जो आँचल छुड़ा न पाए।

कलियों के अरुणिम तन पर
तुम, प्रेम - मिलन बन छाओ
बिसरा दूँ जग की सुध बुध
कुछ ऐसे गीत सुनाओ।

कल युग भौतिकता कहती
आनन्द यहीं, ले जीवन
अविरल आँसू आहों में
जीना जीवन पागलपन।

तुम सुषमा के जीवन की
क्यों त्याग गए तन्मयता
कब से सीखी यह तुमने
सावन घन - सी निर्ममता।

वियोगिनी

प्राणों की मृदु वीणा पर
क्यों गीत प्रेम का गाया
स्वर लहरी छोड़ अधूरी
क्यों तुमको गमन सुहाया।

पूजा मन की प्रतिमा को
केवल मोती से किसने ?
पीड़ा को बिठा लिया है
तन की समाधि में जिसने।

आराध्य देव जीवन के
कैसे तुमको बिसराऊँ
हैं तार नहीं वीणा में
मैं कैसे आज बजाऊँ।

प्रियतम कब साथी होती
रजनी में अपनी छाया ?
क्यों छल कपटों से पूरित
यह सकल विश्व की माया।

अरुणिम कोमल किसलय पर
यह गीले मोती कैसे
यौवन के मीठे स्वर में
कलियाँ रोयी हों जैसे।

परवश कलियों का जीवन
जीवन भी क्या जीवन है
आघात सहें वे प्रतिपल
मन पर, वह भी क्या मन है।

मावसी हृदय पर मेरे
संशय का डेरा डाले
ग्राया है कौन यहाँ पर
छल करने, जगती वाले ?

जगती तल सूना - सूना
लगता है बिना तुम्हारे
सुख भोगों का घर खाली
ताना कुसुमायुध मारे।

नित ज्वालाग्रों में जलती
कहती शलभों की टोली
'बंधती कोमल धागों में
यह जगती कितनी भोली'।

मेरे दर्पण नयनों में
है सुधि का चित्र तुम्हारा
पीड़ा ने अनुक्षण जिस पर
आँसू ही केवल वारा।

दृग से दृग नहीं मिलातीं
मोहन राधा मानस की
उलटी करवट से सोतीं
अभिलाषाएँ अंतस की।

आशा को क्षार बनाकर
आते बेसुध जीवन में
क्यों निर्मित महल गिरा कर
नित मुस्काते हो मन में।

वियोगिनी

मेरी क्या चिन्ता उनको
मैं रो - रो कर जीती हूँ
तन - मन की सुधि को भूली
दुख में आँसू पीती हूँ।

वियोगिनी

बीते जीवन की मन में
सुधि की रेखायें उभरीं
उन पर गहरे चिन्तन से
सरि - सी सरि दृग से उतरीं।

बह रही कामना सरि - सी
आकर तुम बांध बनाओ
अन्यथा विश्व में होगा
पहले - सा प्रलय बचाओ।

आखों के घन तुम अपनी
सुन्दर निधि आज छिपा लो
प्रियतम गीले आँचल की
आ दुर्लभ लाज बचा लो।

नयनों की सीप सेज पर
करुणा रहती है सोई
उसकी अन्जान व्यथा में
पुतली ने निज निधि खोई।

नीरवता में बह बह कर
प्रियतम, कहती दृग - धारा
'घेरेगी अनुक्षण तुमको
आजन्म अमावस - कारा'।

रो रो कर कहती ऊषा
गोपन रहस्य जीवन का
लम्बी वियोग की रातें
लघु जीवन मधुर मिलन का।

सारा जीवन यदि बीते
दुख की कोमल कलियों में
सुन्दर पल छिन कट जाए
सुख से संसृति गलियों में।

प्रिय, अनङ्गना मीरा ने
कन - कन घनश्याम बनाया
जग ने उपनाम दिये पर
कब उसने उन्हें भुलाया।

पीड़ा से हरा भरा तन
क्या अनादेय है साथी
मंजुल मन प्रेम सुमन की
यह सहज संजोई थाती।

अंकित अचला अंचल पर
फूलों की प्रेम कहानी
समझा है जग ने जिसको
साधारण दृग का पानी।

यह अर्धचन्द्र - सी भौहें
फिर निशा निवासिनि आँखें
मम झुलसे विरहानल से
कानन की सारी शाखें।

प्राणों ने यह कब चाहा
आँसू ही बिखराओ तुम
जग निठुर नियति बंधन है
कुछ पल तो हरषाओ तुम।

पुंछता देखा है जग में
सिन्दूर अरुण कलियों में
निर्ममता का कटु नर्तन
देखा यम की गलियों में।

मानव अंतर के पावन
क्यों मुक्तहास पर बंधन
कुंठा में जीते - जीते
आँसू बन जाता जीवन।

वह हँसी नींद सुख वैभव
वह अरुण लजीली बातें
बदला करतीं अब चोली
वह मधुर चाँदनी रातें।

ओ मेरे जीवन संगी
तुम काव्य कल्पना जीवन
तुमको प्रत्येक जनम में
पहचान गया अन्तर्मन।

जीवन - अर्चन थाली में
आशा के सुमन सजाए
विश्वास नहीं आ देखो
वे कब के हैं मुरझाए।

कह दिया किसी ने मुझ से
जीवन है व्यथित कहानी
शुचि साधन स्वर्ग दिलाता
यह कल्पित कथा पुरानी ।

सागर - मन कोमल लहरें
तट - भाग्य रहीं टकरातीं
उठतीं गिरतीं बिलखातीं
फेनिल आँसू बिखरातीं ।

इस खण्डहर से जीवन की
यह साँझ डूबती साथिन
अरुणारी ऊषा कहती
मैं अतिथि यहाँ थी कुछ दिन ।

उनको अपना कर हमने
अपनापन बेंच दिया है
वह सुख करवटें बदलता
हमने दुख मोल लिया है।

धूमिलतम बूढ़ी ऊषा
छाई नव जीवन पथ में
इतनी भी ज्योति नहीं जो
दृग से देखूँ इति अथ में।

विस्मृत ऋतम्भरा मेरी
पागलपन में यह बोली
'संज्ञा थी तुम थे सुख था
पर अब आँसू की टोली'।

जीना दूभर होगा यदि
दुख ही दुख हो जीवन में
जीना दूभर होगा यदि
सुख ही सुख हो जीवन में।

नीरद ! क्या तुम संदेशा
लाए मेरे प्रियतम का
या मुझको भान कराने
आये हो जीवन तम का।

उत्कंठा शेष रही है
तुम से मिलने की केवल
कुछ भाग्य रेख ही उलटी
मैं खोज न पाया मृगजल।

वियोगिनी

आशा का सम्बल लेकर
जलती दीपक की बाती
होकर निराश जग भर से
मंगल प्रकाश बिखराती।

दिन द्वार निहारा करते
रातें तकतीं अम्बर को
सागर अंतर की लहरें
परवश धुनती हैं सर को।

पीड़ा के शाश्वत कर में
छोटी जीवन की पाती
लम्बी बाहें, पर आशा
क्यों परस न करने पाती।

वियोगिनी

दुर्दिन वियोग में मेरे
आँसू ही मीत बने थे
कम्पित से भाव उसी के
कागज पर गीत बने थे।

नित कल कल ध्वनि निर्झर की
करुणा कविता कहती है
हिमगिरि की, विरह व्यथा की
दुख भरी कथा बहती है।

अपना जीवन सुख बन्दी
श्यामल अलकों की कारा
सुस्मित रेखा अधरों पर
मेरे दृग आँसू धारा।

वसुधा पर लुटा रहा था
अम्बर कुबेर निज वैभव
मैं ठुकरा रहा उसे था
छवि रंजित मांग रहा अब।

पीड़ा का राज्य हृदय में
इसका दृग नीर प्रदीपक
यह व्यर्थ छोड़ते घर क्यों
जग इनका प्रत्याक्षेपक।

घनश्याम काग खाकर क्या
दृग के जग में आये हो
मिटने का नाम न लेते
किस माँ के तुम जाये हो।

ग्रंतरतम कौन कि जिसको
निष्ठुर तुमने न सताया
प्रेमी निज समझे जिसको
उसने ही नयन गिराया।

दुख की जगती में किसको
सुख मिलता योग क्षणों-सा
हर कण में वसुंधरा के
दुख खिलता योग क्षणों-सा।

मिलता मैं धूलि कणों में
बनता नयनाश्रु पुलक कर
चूमूँगा पद प्रियतम के
कहता हूँ मौन ढुलक कर।

मुस्कान धरी रह जाती
जीवन में जब मैं आता
मेरा अस्तित्व अमर है
हर एक निमिष कह जाता।

दृग से जो बिखरा करते
दुख का हल्का करने मन
उनको मीना मुक्ता या
कहते हैं तरल तुहिन कन।

धरती पर तुहिन नहीं यह
अम्बर पर रजत सितारे
दुख की दुखती कलियों के
यह अश्रु पराग निखारे।

वियोगिनी

पाषाण हृदय से बह कर
कर्कशता ओझल करते
अन्तर को उसके तुम ही
पिघलाते कोमल करते।

जग में क्या ढूँढ़ रहा है
सूने मन का खालीपन
जग तो निर्मम निष्ठुर है
पायेगा क्या उन्मन मन ?

वियोगिनी

मलयज सुगंध - सा मादक
सुख उनके आलिंगन का
ऐसा क्या कुछ उनमें जो
रोता दुख मेरे मन का।

छोटी किरनों की बाहें
छोटी शलभों की माला
तम मुकुट उतार रहा है
अभिषेक कर रही ज्वाला।

मलयानिल का धीरे से
आकर मेरा तन छूना
तीखे तीरों - सी सुधियाँ
है वर्त्तमान भी सूना।

वियोगिनी

मृदु मन मंदिर की वासी
थिर तपन तल्प तप करती
आराध्य अभावों में ही
रीती दृग गागर भरती।

कैसा ईंधन यह ज्वाला
निरधूम हवन अन्तर में
सूझी मस्ती गीतों को
इस छवि की जगर मगर में।

ऊषा के प्रथम प्रहर में
कलियों के कोर लजीले
धरती अम्बर की क्रीड़ा
निशि में कमलानन गीले।

वियोगिनी

सौन्दर्य - जनित मन - सुख हित
उतरा करता अम्बर से
लुक छिप कर निशि में चन्दा
करता किल्लोल लहर से।

श्यामल कुन्तल घन छाया
शशि मुख वसुंधरा होती
जगते थे सुख के सपने
उनमें अब पीड़ा रोती।

क्या कुछ है छवि में ऐसा
जीवन का सुख छिन जाता
सागर भी भ्रम में पड़ कर
रो बिलख बिलख पछताता।

चाहे तुम भूलो मुझको
मैं फिर भी पहचानूँगी
प्रियतम आगत जीवन में
सर्वस्व तुम्हीं को दूँगी।

अपने घर अतिथि बना दुख
उपहार नीर तुम दोगे
अपमान न घर आये का
करते, मन, यह मानोगे।

कुछ शेष नहीं पाने को
अरूणिम अनुरागी काया
कह रही आत्मरति मेरी
तोड़ेगी बंधन माया।

तरसेगा फिर भी यह मन
सुख पाने छवि आनन का
तब ज्योति हीन सोएगा
मादक सुख इस जीवन का।

सूखी जीवन - कलियों में
यौवन - मकरन्द सरस दो
जग के निराश आँगन में
आशा के स्वप्न बरस दो।

हर निशा जागरण, सुधियाँ
आँसू, आँहे, सूनापन
कैसा घर रूप नगर में
दुखता जिसमें दुख का मन।

मृदु जलन प्रेम के मन की
बन जाये कवि की वाणी
हर मन का कलुष जलाये
हो सुखी धरा पर प्राणी।

सन्तप्त जगत से दुख को
ढूँढ़ो बिखरे सोने में
गोदी में उसे उठाना
यदि पड़ा मिले कोने में।

पाकर दर्शन सुख वैभव
क्यों आज कामना रोई
पगली - सी होकर उसने
क्यों निज चेतनता खोई।

जग के विस्तृत आँगन में
जीवन सुखमा चिर नूतन
इसका रहस्य वसुधा पर
नित जनम मरण आलिंगन।

वियोगिनी

आकर्षण क्या अम्बर में
निशि - जग जो तारे देखें
मिथ्या छवि - जग हँस कहता
नभ का मयंक क्यों पेखें।

यह मानव परवशता में
कटु - क्रूर यातना सहता
अनुराग नयन से दुख भी
परवश होकर ही बहता।

मिल जाये दग्ध हृदय को
छवि के आँचल की छाया
मुट्ठी में बन्दी होगी
पावनतम सुख की काया।

पागल मन ने अब समझा
निर्मम सौन्दर्य - सुधा मन
सुख कहीं नहीं जगती में
बस समिध शैल - सा जीवन ।

परिमर सा चंचल जीवन
सरिता सा बहता प्रतिपल
मानस की कैसी छलना
घावों सा रिसता अविरल ।

फूलों के दृग भर देती
मिथ्या जग की नादानी
तम रस बन बिखर पड़ी है
धरती पर प्रेम कहानी ।

ऐसे बंधन में सुख दुख
बंध जाये जो मृदु कोमल
धरती पर बिखरी पीड़ा
छल सके न उनको निज छल।

ओ पीड़े, इस मंदिर में
मंगल रोली सिर मलना
छोटे मानव - जीवन में
नव ज्योति जगाकर जलना।

आनंद - सृजन में पीड़ा
अपनी सुध बुध खोती है
नीले अम्बर के नीचे
बेसुध वसुधा सोती है।

बंधन सुख दुख, दुख सुख के
ओ जनक रूप दिखलाओ
उनको मैं काटूँगा यदि
जीवन में तुम आ जाओ।

पर तृषा तृप्ति का यह सुख
बिरलों को ही मिलता है
दाहक अगनी सह सह कर
कुन्दन का मुख खिलता है।

थोड़ी सी मधु की बूंदें
थोड़े मृदु हास लुटा दो
जग - जीवन आनन्दित हो
थोड़े मधुमास लुटा दो।

यह दृष्टि जहाँ जाये
छाया है सुन्दरता की
आनन्द, मोह, परिवर्त्तन
माया है सुन्दरता की।

सुन्दर की पूजा करलो
मंदिर उपासना वाले
मानव को देव बना दो
ओ मूर्ति अर्चना वाले।

मृदु मुरली विश्व प्रेम की
गूंजे रसमय हर मन में
यह प्यास अभागिन मेरी
बिखरे जग के कन कन में।

संभव हो जितना तुमसे
औरों के हित तुम जी लो
पर तृषा तृप्ति कर, जग में
विष के नीले घट पीलो।

कुहुकिनि ने सीखा किस से
मधुरिम लय में यह गाना
"तुम जियो और जीने दो"
गा, सिखा रही मुस्काना।

संसृति सुन्दरतम वभव
नारी शरीर सुन्दरता
खोजो पाओगे प्रेयसि
पावनतम माँ की ममता।

सूखा नीरस मुरली तन
मीठे स्वर में क्यों बोला ?
बंशी वादक ने लेकिन
इसका रहस्य कब खोला।

वियोगिनी

ओ रूप - सुमन तुम खिलकर
सरसो अनुदिन आँगन में
सुख शान्ति मधुरता वैभव
बरसो प्रतिक्षण जीवन में।

मेरे गीतों में जागो
ओ मधुर भावना वाले
इस आँगन आ खुल जाओ
अनखुली कामना वाले।

पढ़ती कब तृषा हमारी
चिर महामिलन की भाषा
ज्योतित यों शव मंदिर में
तन - मन - सपने अभिलाषा।

वियोगिनी

नभ की यह श्याम घटाएँ
बिखरी हरीतिमा मनहर
कहती हैं मिलकर रह लें
कब मिलता जीवन सुन्दर ?

तुम मुस्काओ कानन की
बिखरी जाती हैं कलियाँ
हँसने पर टूटा करतीं
मोती माला की लड़ियाँ।

छा जाती कान्ति विपिन में
कलियों के मुस्काने से
बढ़ जाया करती शोभा
सूने घर की, आने से।

वियोगिनी

कैसा यह गीत निराला
यौवन वंशी पर गूंजा
वह सार्थक प्रेम अमर है
जिसने हर दुख को पूजा।

वैभव में सोने वालों
हँसते हँसते सुख बाटो
विष वाले तम के विरवे
आँगन - आँगन से काटो।

यह महामन्त्र जीने का
उच्चारित आँगन - आँगन
संसृति है एक शिवालय
हर प्रतिमा जिसकी पावन।

वियोगिनी

श्रम साधन से परिपूरित
जीवन की मधुऋतु प्याली
जब चाहो आसव छलके
जब चाहो लहके डाली।

मेरे जीवन सपनों का
संसार मुकुर बन जाये
सुखमा का प्रेम, जगत में
सुख - शान्ति - मधुरता लाये ।

वियोगिनी

तुम मेरे मन मन्दिर में
जैसे पराग शतदल में
आखों में रहते ऐसे
जल की बूंदें हों घन में।

हिम शान्त बिखरता जैसे
सुख बिखरा दो मतवाले
जगती के सब दुख ले लो
अधरों से रोने वाले।

ओ मधुर वेदने आओ
मैं तुमको गले लगाऊँ
अपना आसव छलकाओ
आनन्द बरसता जाऊँ।

वियोगिनी

हंसते हंसते सुख बांटें
कुटिया में सोने वाले
आँखे खुल जायें देखें
वभव में सोने वाले।

कानन में कलियाँ चटखें
अलियों में रवि - सी लाली
हर उर में मादकता हो
चहके उपवन का माली।

रजनी सुख नींद लुटा दे
संध्या अनुराग बरस दे
दिन का प्रकाश जग भर में
सुख शान्ति मधुरता रस दे।

वियोगिनी

मानस की स्वप्निल टूटी
बिखरी धूमिल आशायें
महकें मेरे आँगन में
जग भर में रस बरसायें।

हर शान्त हृदय की ज्वाला
लाती जग में परिवर्तन
भूगोल, जलधि की सीमा
इतिहास बदलता है मन।

ओ मेरे सहचर विहसों
कल्याण जलद बन बरसो
सुखमा सुख रसमय कन तुम
बसुधा के आंगन सरसो।

ओ सत्यम् शिवम् सुन्दरम्
गरिमामय पूजन वंदन
सुख दुख छाया संसृति में
आनन्द बरस दे कन कन।

इति अथ के रंग महल में
मंजुल हों मुकुर मनोहर
उनमें फिर प्रतिबिम्बित हों
कृतियाँ अकृतियाँ ... सुन्दर।
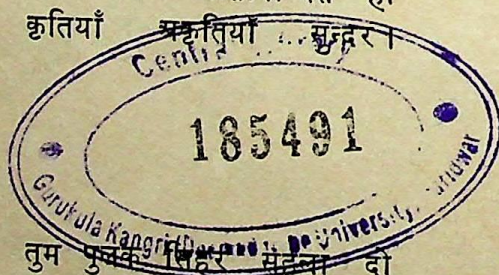
तुम पुलक सिहर महका दो
सुख से आहत हर प्राणी
हर दुखी अधर यह बोले
कविता प्राणी कल्याणी।